ज़िन्दगी जलती है

मेरी शैल,

आज शायद मैं यह अच्छा नहीं कर रही कि तुम्हारी खुशियों से भरपूर दुनिया में, पाँच साल के बाद, फिर मैं अपनी उदास घटाओं को लिये उतर रही हूँ, ये वे घटाएँ हैं, जो नीले आसमान की सुन्दरता में धब्बे बनकर पर्वतों के ऊपर उभरती हैं, छाती हैं और हवा के झोंकों में कहीं उड़ जाती हैं। बरस सकना उनके भाग्य में नहीं।

शैल रानी, आज मैं, इसके पहले कि हमेशा-हमेशा के लिए मेरी आँखें मुँद जायँ, तुम्हारे आगे खुलकर खूब रो लेना चाहती हूँ। कदाचित् इसी से कुछ हल्की हो जाऊँ और मेरे मन-प्राण में एक मुद्दत से छाये हुए बोझ का बदरंग कुहासा कुछ छँट जाय। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे सामने मैं कुछ भी नहीं कह पाऊँगी, सिवाय फूट-फूटकर रो लेने के और शायद मेरी बार-बार उमड़ उठने वाली हिचकियाँ मेरे ओंठों में ही घुट जायँ।

आज मैं ज़िन्दगी के पैंतीस सूने-सूने बरस बिताकर एक अधेड़ औरत हो गयी हूँ, मैं एक बूढ़ी हो रही कुँआरी हूँ, जिसकी आँखों से

ख़ुमार उतर चुका है और पुतलियों में संजीदगी आ गयी है; जिसके रुखसारों के फूल अब मुरझाने लगे हैं। आज भी, शैल, मैं यक़ीन नहीं कर पाती कि जीवन के ये व्यर्थ पैंतीस बरस बिताकर केवल मौत का इन्तज़ार कर रही हूँ। जिस तरह आज की शैल, जो तीन बच्चों की माँ है, जिसके चेहरे की चमक अब धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है और जिसकी छातियाँ ढलककर बच्चों के ओंठों से जा लगी हैं, के पीछे १७ बरसों का यौवन, चंचलता और सौन्दर्य लिये तुम मेरे आगे उभरती हो, ठीक वैसे ही आज अपने को याद करती हूँ तो मेरे आगे वर्तमान मुँद जाता है और कहीं बहुत पीछे से, रेशमी बादलों की ओट अपना सौन्दर्य लिये हौले-से मुस्करा उठने वाली नीहार-बाला की तरह, अतीत के धुँधले पर्दों को चीरकर धीरे-धीरे एक सलोनी सलमा खड़ी हो जाती है।

कल कोई सात साल के बाद मैंने आईने में अपने आपको देखा। वैसे तो बार-बार आईना देखने की मेरी उम्र बीत चुकी है, लेकिन इन सात बरसों के बीच मैं एक बार भी आईने के आगे नहीं गयी। मैं क्या देखूँ, शैल, अपने को देखकर भावनाएँ अब थम नहीं पातीं। एक बड़ा ही करुण उन्माद हो आता है। फूट-फूटकर रोने को मन करता है, पर मैं रो नहीं पाती। कल की सलमा की लाश पर मैं खड़ी होकर आज सलमा की अधूरी ज़िन्दगी की कहानी कहूँगी और तभी मैं पूरे सन्तोष के साथ मर पाऊँगी।

आज से लगभग पन्द्रह बरस पहले जब तुम मुझे छोड़ गयी थी, मैं एक बीस बरस की जवान और ख़ूबसूरत कही जाने वाली लड़की थी, जिसके शादी-रिश्ते के पैग़ाम कोई ग्यारह साल की उम्र से ही दूर-दूर से आने लगे थे और सहेलियों से लगातार प्रशंसा सुनकर कि सलमा कैसी लगती है, उसकी आँखें कैसी हैं, बाल कैसे हैं, चेहरे-मोहरे

में कैसी शाहज़ादी-सी लगती है, जो अकेले घण्टों ही आईने के आगे खड़ी रहती और सोचती, सामने आईने में पड़ रहा प्रतिबिम्ब यदि उसी का है, तो इस रूपसी का प्रियतम कैसा होगा....और उसकी कल्पना को कोई भी आधार नहीं मिलता और घण्टे-के-घण्टे सरक जाते....

तुम मुझे उस समय मिली, जबकि यौवन का आभास तुम्हें अभी-अभी ही हो पाया था, उस उम्र में, जब लड़कियों की आँखें खुली रह कर भी हमेशा ढँकी-सी होती हैं और सैकड़ों लोगों से बातें करते रहने पर भी मन कहीं और ही उड़ा-उड़ा फिरता है। कदाचित् मुझे तुम जैसी ही किसी सहेली की तलाश थी, जिसकी हल्की उम्र की कच्ची भावनाओं के साथ मैं उड़ पाती और नर्म-नर्म जज़बातों में पर लगाती। शायद हुआ भी यही। हम दोनों तब 'दो' कब समझे जाते थे। जहाँ कहीं किसी ने शैल को देख लिया, वह जानता था कि सलमा भी वहीं कहीं होगी, भले वह जगह कोई महफ़िल-मजलिस हो या किसी परिचित अथवा पड़ोसी का घर।

हम दोनों के बीच एक दिन दीपक आ गया, जिसने तुम्हें मुझसे धीरे-धीरे छीन लिया। मैं उसे ही अकेले क्यों दोष दूँ? तुम स्वयं अपने आप ही मुझसे छिन गयी। दीपक एक सम्पन्न परिवार का अच्छा लड़का था। व्यवहार-कुशल, सुन्दर और हर तरह से तुम्हारे योग्य। तू बड़ी भाग्यशाली है, शैल, जिसे प्यार किया, उसे पा भी लिया। एक उम्र आती है, जब किसी के पैरों पर अपना सिर रखकर बड़ी राहत मिलती है। इनमें से कुछ ऐसी अभागिनें भी होती हैं, जिनके सिर के नीचे से पाँव अनजाने ही सरक जाते हैं अथवा सरका लिये जाते हैं।

एक दिन तुमने मुझसे पूछा था, 'सलम, सच कहना भला, क्या तुम्हारे मन में कभी किसी का भी खयाल नहीं सुलगता?'

मैं तुम्हारे प्रश्न पर ठहरकर विचार करने लगी, क्या सचमुच ही

मेरे मन में किसी का ख़याल कभी कहीं सुलगा ? बचपन काफ़ी दूर छोड़ आयी हूँ, इसलिए तब की बात सोच सकना ज़रा कठिन है। जब से होश सम्हाला, मैं दीवारों की आड़ बन्द कर दी गयी हूँ। जो आ जाता है, उसी से ही मिल पाती हूँ। अब्बा का ख़याल था कि वे एक जागीरदार के ख़ानदान से ताअल्लुक़ रखते हैं। उनमें ख़ानदानी अकड़ और झूठी शान कुछ ज़्यादा थी, शायद इसलिए कि वे किसी रियासत के दीवान थे। भला बड़े लोग क्या हर किसी से मिलते हैं ?

आज जो मैं यहाँ तक पहुँच गयी, उसका कारण एक-मात्र क्या यही ख़ानदानी अकड़ नहीं है, शैल, बता तो ? तुम तो सब जानती हो कि बीस बरस से लेकर लगभग सत्ताइस बरस तक मेरे ब्याह के लिए कितने पैग़ाम आये और लौट गये। शायद मेरे अब्बा की निगाह में किसी भी लड़के का ख़ानदान उनके स्तर का नहीं था।

लोगों के कहने पर कि वे मेरा रिश्ता कहीं तय क्यों नहीं कर देते, वे कहते कि मेरे योग्य कोई लड़का ही नहीं मिल पाता, क्या करें ?

तुम मेरे साथ उन दिनों नहीं रही, शैल, अच्छा ही हुआ। अपनी ज़िन्दगी का एक दिन बिताकर मैं दूसरे दिन सोचती कि मेरी एक दिन बढ़ गयी उम्र ने मेरे एक दिन की लालसा-भरी ज़िन्दगी का गला मरोड़ दिया, इतने हौले कि और तो और स्वयं मुझे भी इसका एहसास नहीं हो पाता। और सत्ताइस बरस पार करते-करते मुझे तो विश्वास हो ही चला कि कदाचित यह जीवन मैं अधूरा लेकर ही आयी हूँ और अकेले ही किसी दिन बिना किसी का प्यार, मनुहार और दुलार पाये मुझे दम तोड़ना पड़ेगा। सुनती हूँ कि अधूरी हसरतें लेकर मर गये लोगों की रूहें भटकती हैं। मैं सोचती हूँ कि अगर यह सच भी हुआ, तो मेरी रूह किसके गिर्द भटकेगी, शैल ?

अपने पिता से घृणा करना सुनकर, पता नहीं, तुमको कैसा लगे,

किन्तु मैं आज अपने मन की आवाज़ को लाख चाहने पर भी दबा नहीं पाती हूँ। मेरे अब्बा की झूठी शान को तुम क्या कहोगी शैल !

सत्ताइस पार करते-करते मैंने अपने को देखना बन्द कर दिया, मुझमें इतना साहस कहाँ था कि मैं अपने को देख पाती ? उसके बाद सिवाय रो लेने के मेरे पास और क्या बच रहा था ?

आह ! कहाँ गया वह रूप, वह सौन्दर्य ? रूपसी की वह शबनमी मासूमियत ! चेहरे की झुलस गयी रंगत में कहाँ थी वह केवड़ई, महकीली गोराई, जिसकी फिसलन पर प्यार के अतिरेक और आवेश से तेरे भी ओंठ कई पलों के लिए जा थमते ? कुछ नहीं था, शैल, वह शबनमी चाँदनी मुरझाकर पीली और मुर्दा हो गयी थी।

अब्बा तब भी मेरी ओर से आँखें मूँदे थे। कदाचित उस समय वे सहसा चौंके और अपना टूट-फूट गया अहंकार दफ़नाकर मेरे आगे आये जब कि मेरी छोटी बहन नजमा ने सामने रहने वाले एक मामूली क्लर्क से रोमान्स करके यह धमकी दे दी कि यदि उस लड़के से उसका ब्याह नहीं कर दिया जाता तो वह उसके साथ कहीं भाग जायगी। यही रास्ता यदि मैंने भी इख्तियार किया होता और भाग जाने के बदले मर जाने की बात लिखी होती तो भी शायद अब्बा को बदल पाना असम्भव ही था। कल के अहंकारी और खानदान की आन पर मर मिटने वाले मेरे अब्बा मेरे आगे फूट पड़े। पर किसी तरह नजमा का ब्याह हो गया और सुख-चैन की लालसा लिये ब्याह के दो साल बाद ही अपने होने वाले बच्चे के साथ अपने जिस्म में मिट्टी का तेल छिड़क, आग लगाकर वह मर गयी।

अब्बा ने जब महसूस किया, तब बहुत देर हो चुकी थी, शैल ! मैं क्या करती ? अपने तीस साल के शरीर में मैं वह-सब कहाँ से लाती, जो एक पति को दुल्हन से चाहिए। अब्बा के ज़िद करने और बार-

बार रो पड़ने पर भी मैं फिर ब्याह के लिए तैयार न हुई। उसके लगभग एक साल बाद अब्बा चल बसे। सम्भव है, हम लोगों का सदमा ही उनसे उनकी ज़िन्दगी को छीन बैठा हो। मरने के दो दिन पहले अब्बा बहुत रोये, बहुत पछताये और बार-बार माफ़ी माँगी कि उन्होंने मेरी ज़िन्दगी खराब कर डाली। मैं क्या कहती शैल....मैं क्या कहती, बोल?

अकेले अब्बा को ही मैं दोष नहीं दूँगी। कहते हैं कि दुनिया में लड़की पैदा करने के पहले ही खुदा उसके लिए वर पैदा करता है। मुमकिन है कि यह ठीक हो, लेकिन मेरे लिए इसे सच करके मान सकना कठिन है। आज मैं पैंतीस बरस की हो गयी हूँ, मेरी पेशानी के ऊपर और कनपटियों के बाजू बाल सफ़ेद होने लगे हैं। मैं बेकार जीती ही हूँ, शैल, मेरी ज़िन्दगी का कोई मक़सद नहीं। मैं जानती हूँ कि चाहने पर मौत नहीं आयगी। मैं नजमा की मौत भी पसन्द नहीं करती।

तुझे शायद याद हो कि पिछली बार जब तू आयी थी तो हमारे यहाँ का पुराना नौकर टी० बी० का मरीज़ हो चुका था। वह कितना पुराना है और कब तथा कहाँ से आया, यह हम लोग भी नहीं जानते। जब से होश सम्हाला, मैं उसे अपने घर में ही देख रही हूँ। बीवी-बच्चे कोई नहीं, अकेला था, पूछने पर उसने एक बड़ी ही कड़वी मुस्कराहट के साथ शर्माकर बताया कि ब्याह के साल-भर बाद ही उसकी बीवी उसे छोड़कर मायके गयी और वहाँ उसने किसी और से ब्याह कर लिया। उसे अपनी जात की औरतों पर विश्वास नहीं, इसलिए वह तब से अकेला ही है। हमारे घर ही उसकी जवानी बीती, बाल पके और वह मर गया।

मरने के पहले जब वह अस्पताल से हमारे मकान के अहाते की

कोठरी (जो सारी ज़िन्दगी उसकी अपनी थी) में लाया गया तो उसके पास मैं अधिक आने-जाने लगी थी। योंही शैल, मेरे हृदय में उसके लिए एक बड़ी ही करुण ममता हो आयी थी। मैंने उसे दवा पिलायी। उसकी देख-भाल की। उसका बिस्तर लगाया और तू आश्चर्य मत करना, उसका सिर तक मैं घण्टों दबाती रही, यह जानते हुए भी कि टी० बी० कैसा रोग है और उसके रोगी कितने दिन जी पाते हैं।

वह अभागा नौकर, जिसने अपना जीवन हमारी नौकरी में बिता दिया, मुझे अपनी सेवा-टहल करते देख रोने लगता। उठकर मना करने की तो उसमें शक्ति ही नहीं थी। मेरी ओर फिरकर गीली हो उठने वाली उसकी पुतलियाँ और सूखे-काले गालों की रूखी सिलवटों में फिसलने वाली आँसू की आड़ी-टेड़ी लकीरें मुझसे बार-बार कहतीं कि साधारण आदमी से ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती, मैं देवी हूँ! मुझे हँसी आती है, शैल, वह आदमी कितना मूर्ख था! दो दिन उसके पास बैठ गयी, बिस्तर लगा दिया, पेशानी पर हथेली धर दी और चार दिन दवा पिला दी और वह मुझे देवी कहने लगा। उसे क्या मालूम था कि मैंने किस स्वार्थ से उसकी सेवा की? वह सब कुछ होने पर भी एक पुरुष था, शैल!

एक पुरुष मेरे पिता थे, जिनके प्रति हृदय में सदैव विद्रोह सुलगा किया है। वे मुझसे स्नेह और सेवा अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी नहीं पा सके। सेवा-सुश्रूषा का नारी-सुलभ स्वभाव जो मुझमें था और जिसे मैंने किसी अज्ञात के लिए कल्पना में ही सँजो रखा था, अन्त में इस नौकर के लिए ही उमड़ पड़ा। यह भी तो एक प्रकार की वासना ही है न, शैल!

लगभग एक माह के पश्चात वह मर गया और छै माह के बाद मुझे भी टी० बी० हो गयी। मैं उस नौकर की बड़ी अहसानमन्द हूँ, रे

शैल ! आज वह होता तो मैं कृतज्ञ होकर उसके पाँवों पर अपना सिर रख देती। जीने की लालसा मुझमें अब नहीं रही।

कल डाक्टर आया था और मैंने सुन लिया कि मैं ज़्यादा दिन जी नहीं सकूँगी। पिछले डेढ़ बरस से मेरी ज़िन्दगी सुलग रही है—एक स्वर-हीन कड़ुवी और रूखी जलन, जिसमें किसी पल भी मैं अपने सारे स्वर समेटकर बुझ जाऊँगी। ठण्डी, मटियाली क़ब्र की पथरीली छाँव....

ओ मौत ! मैं तेरा आवाहन करती हूँ। आ, मेरी रक्त-मांस-हीन दुर्बल भुजाओं को सहारा दे, मेरी ज़र्द फीकी पुतलियों पर अपना काला पर्दा डाल और मेरी छटपटा रही साँस को अपने में बाँध ले, क्योंकि मेरी ज़िन्दगी जल रही है.....

* * *